आशा पारस बहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित(PEER REVIEWED) शोध-पत्रिका
खंड -1, अंक-1, अप्रैल-सितंबर 2025 (प्रवेशांक), apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

विकास का सह-अस्तित्ववादी सिद्धांत

अंजली अवधिया
प्राध्यापक (भौतिक शास्त्र)
सँयुक्त संचालक, रूसा, उच्च शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ
anjalioudhia@gmail.com

शोध सारांश

1850 के दशक तक, चार्ल्स डार्विन की 'ऑन द ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़' में डार्विन ने पहली बार 'प्राकृतिक चयन' का सिद्धांत दिया और उसके आधार पर विकासवादी परिवर्तन के लिये एक परिष्कृत प्रक्रिया भी प्रस्तुत की। परम्परागत विज्ञान में डार्विन का विकासवाद सर्वमान्य सिद्धांत माना जाता है, जो विकास के लिये सतत संघर्ष की अवधारणा पर आधारित है। 1871 में, डार्विन ने 'द डिसेंड ऑफ़ मैन, एंड सिलेक्शन इन रिलेशन टू सेक्स' प्रकाशित किया, जिसमें मानव विकास पर उनके विचार शामिल थे। डार्विन ने तर्क दिया कि मानव पशु का ही परिष्कृत रूप है। आधुनिक पश्चिमी विज्ञान में डार्विनिज़्म का विरोध भी हुआ और विकास की कई नवीन अवधारणाएं भी दी गयीं, जैसे विकासवादी संश्लेषण का विचार 20वीं सदी के आधुनिक संश्लेषण को प्रतिपादित करता है जिसमें बहुस्तरीय चयन सिद्धांत, ट्रांसजेनेरेशनल एपिजेनेटिक इनहेरिटेंस, और विकासशीलता जैसी अवधारणाएँ शामिल हैं - हालाँकि इस पर कोई सर्वसहमति नहीं है।

यह शोध पत्र सृष्टि के विकास के बारे में डार्विन के विकास वाद की कमियों को इंगीत करते हुए श्री ए. नागराज द्वारा प्रतिपादित सह-अस्तित्व के सिद्धांत के आधार पर 'विकास के सहस्तित्ववादी सिद्धांत' की अवधारणा प्रस्तुत प्रस्तुत करता है। यदि सृष्टि का अध्ययन बिना किसी पूर्वाग्रह के, उसी रूप में किया जाये जैसी वह है, तो स्पष्ट होगा कि वास्तविकता डार्विन के 'जीने के लिये संघर्ष' के सिद्धांत के विपरीत है। अस्तित्व में कोई संघर्ष नहीं है, केवल पूरकता और प्रयोजन ही विकास को नियंत्रित करते हैं। डार्विन का विकास वाद मानव को जीव अवस्था से विकसित इकाई मानता है, किंतु श्री ए. नागराज द्वारा प्रतिपादित मध्यस्थ दर्शन मानव को विकास क्रम की सबसे उन्नत चैतन्य अवस्था की इकाई मानता है, जो जीवन परमाणु के रूप में चेतना के चार स्तरों से गठित हुई है - मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और इनके केंद्र में है आत्मा। जीवन की शक्तियाँ अक्षय हैं।

अस्तित्व की प्रत्येक इकाई हर दूसरी इकाई से जुड़ी हुई है, जो सम्बंधों का एक विशाल नेटवर्क बनाती है। ये केवल निष्क्रिय संबंध नहीं हैं, बल्कि इसमें एक गतिशील अन्योन्य क्रिया शामिल है; जहाँ प्रत्येक इकाई, समग्र इकाइयों के विकास के लिये सक्रिय और पूरक होती है। व्यापक को सह-अस्तित्व के रूप में समझने से वास्तविकता का एक समग्र

आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित(PEER REVIEWED) शोध-पत्रिका
खंड -1, अंक-1, अप्रैल-सितंबर 2025 (प्रवेशांक), apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

दृष्टिकोण प्राप्त होता है, सभी चीजों की परस्परता, पूरकता और उपयोगिता के महत्व को पहचानता है। अनिवार्य रूप से, यह विचार कि "अस्तित्व सह-अस्तित्व है" ब्रह्मांड में सभी चीजों के मौलिक अंतर्संबंध को उजागर करता है।

मध्यस्थ दर्शन- सह- अस्तित्ववाद प्रकृति को चेतन या निर्जीव प्राणियों के साथ व्यापक अथवा मूल ऊर्जा के सह-अस्तित्व के परिणाम के रूप में दर्शाता है। यह परम ऊर्जा अनंत, सर्वव्यापी, शाश्वत और स्थिर है। सभी इकाइयाँ इस व्यापक मूल ऊर्जा में डूबी, भीगी, और घिरी हुई हैं, जो सभी निर्जीव/ जीवित रूपों के क्रमिक विकास का एकमात्र कारण है। इसलिए, 'सह-अस्तित्व विज्ञान' का सबसे मौलिक सिद्धांत ब्रह्मांड के निर्माण के मूल कारण के रूप में व्यापक अथवा मूल ऊर्जा की स्वीकृति पर आधारित है।

प्रस्तावना:

परम्परागत विज्ञान में सृष्टि की रचना के संदर्भ में डार्विन का विकासवाद सर्वमान्य सिद्धांत माना जाता है, जो विकास के लिये सतत संघर्ष की अवधारणा पर आधारित है। प्रकृति के क्रिया कलापोँ का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर यह सहज ज्ञात होगा कि वास्तविकता इसके विपरीत है। अस्तित्व में कोई संघर्ष नहीं है, केवल पूरकता और प्रयोजन ही विकास को नियंत्रित करते हैं।

पदार्थ अवस्था विकास के निम्नतम स्तर पर है। यदि किसी ग्रह में केवल पदार्थ और प्राण अवस्था मौजूद हैं, तो हम इसे आंशिक रूप से विकसित कहेंगे। यदि किसी ग्रह में केवल पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था और जीव अवस्था है (जैसे - डायनोसोर युग), तो ग्रह अर्ध-विकसित कहा जाएगा। लेकिन यदि किसी ग्रह में ज्ञान अवस्था के रूप में मानव सहित सभी चार अवस्थाएं उपस्थित हैं, तो इसे पूर्ण रूप से विकसित ग्रह कहा जाता है। मानव के आविर्भाव के पूर्व पृथ्वी पदार्थ, प्राण व जीव अवस्थाओं से संतृप्त हो चुकी थी, और इन सबके बाद विकास के उच्चतम क्रम में सप्त धातु से सुसज्जित शरीर रचना तथा पंच पूर्ण विकसित ज्ञानेंद्रियों के साथ मानव का आविर्भाव हुआ। यह विकास का सह-अस्तित्ववादी सिद्धांत है, जिसे तर्क पूर्वक स्थापित किया जा सकता है (नागराज, जीवन विद्या एक परिचय, 1998)।

सह- अस्तित्ववादी विकास वाद पृथ्वी पर परमाणु के जड़ से चैतन्य अवस्था तक क्रमिक विकास को तार्किक रूप से प्रस्तावित करता है। आधुनिक विज्ञान में सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास के बहुत से सिद्धांत दिये गये हैं, यह शोध उन सभी के साथ श्री ए. नागराज द्वारा प्रतिपादित मध्यस्थ दर्शन सह अस्तित्ववाद का एक तुलनात्मक अध्ययन करता है।

मध्यस्थ दर्शन में प्रस्तावित विकासवाद :

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार यदि कोई अस्तित्व की वास्तविक प्रकृति का अध्ययन करना चाहता है, तो उसे सह-अस्तित्व का अध्ययन करना चाहिए; स्थिर और शाश्वत अस्तित्व के साथ क्रियाशील और परिवर्तशील प्रकृति का सह-अस्तित्व।

वास्तविकता अस्तित्व के रूप में प्रकट होती है, जिसमें प्रकृति डूबी, भीगी और घिरी हुई है। व्यापक अस्तित्व को किन्हीं दो इकाइयों के बीच, उनकी परस्परता में और उनके चारों ओर देखा गया है। पदार्थ से रहित सभी स्थान व्यापक अस्तित्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। इस सतत प्रमाण के आधार पर यह पूर्णतः स्पष्ट है कि सभी वास्तविकताएँ वास्तव में अस्तित्व में ही डूबी, भीगी और घिरी हुई देखी गई हैं। ऐसी सभी वास्तविकताओं में सक्रियता हमेशा स्वतःस्फूर्त रूप से गति, दबाव और प्रभाव के रूप में विद्यमान रहती है। अस्तित्व शाश्वत, सर्वव्यापी, पारदर्शी, व्याप्त और निरपेक्ष अवस्था के रूप में तथा गति और दबाव से रहित है किंतु, व्यापक में भीगी हुई प्रकृति में पूरकता, विकास, संयोजन और विघटन निरंतर देखा जा सकता है, जो पारस्परिकता में दबाव और तरंगों के रूप में ऊर्जा के आदान – प्रदान के माध्यम से होता है।

पश्चिमी विज्ञान की तरह ही मध्यस्थ दर्शन भी यह मानता है कि अस्तित्व और प्रकृति के सह- अस्तित्व के कारण सर्वप्रथम परमाणु प्रगट होते हैं। परमाणुओं के अंतर्निहित गुणों का कारण भी अस्तित्व और प्रकृति का सह- अस्तित्व है, जिससे परमाणु रचित विभिन्न संरचनाएं प्रकट होती हैं। प्रकृति की विभिन्न इकाइयाँ निश्चित मात्रा में ऊर्जा और पदार्थ का आदान-प्रदान करती हैं, प्रकृति के नियमों का पालन करती हैं, स्व- नियंत्रित रहती हैं। परमाणु में विकासक्रम में जड़ परमाणु, नियम- नियंत्रण – संतुलन का पालन करते हुए अपने अंशों की संख्या तथा मात्रा के आधार पर विभिन्न भौतिक – रासायनिक गुणों का प्रदर्शन करते हैं। मध्यस्थ दर्शन का सर्वाधिक मौलिक विचार है जड़ परमाणु का विकास क्रम में चैतन्य परमाणु में परिणत हो जाने की अवधारणा। चैतन्य परमाणु को मध्यस्थ दर्शन में 'जीवन परमाणु' कहा गया है, जो समस्त भौतिक- रासायनिक परिवर्तनों, मात्रा और भार बंधन से मुक्त हो जाता है, तथा उसमें आशा, विचार और इच्छा रूपी बंध विकसित हो जाते हैं। इस तरह, परमाणु को ही भौतिक-रासायनिक क्रियाओं के साथ-साथ जीवन या जीवन-क्रियाओं के लिए मूल-इकाई माना जाता है। जिस प्रकार सह-अस्तित्व सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, समस्त प्रकृति की नित्य उपस्थिति के रूप में है, उसी प्रकार सह-अस्तित्व में ही जीवन का ज्ञान भी विद्यमान देखा गया है। आधुनिक विज्ञान चेतना के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है। यह शोध विकास के सह- अस्तित्ववादी सिद्धांत के प्रस्ताव को तार्किक रूप से प्रस्तुत करता है।

मूल सिद्धांत : सह-अस्तित्व ही अस्तित्व का मूल कारण है

परमाणु हमेशा शाश्वत मूल ऊर्जा के साथ सहअस्तित्व में रहते हैं, जो उन्हें सतत गति के लिए प्रारंभिक ऊर्जा प्रदान करती है। मध्यस्थ दर्शन के अनुसार परमाणुओं की इस सतत गतिशीलता का कारण व्यापक अथवा मूल उर्जा से प्राप्त प्रेरणा है और परमाणु जिन अंशों से मिलकर बना है, वे सतत रूप से गतिशील हैं। अस्तित्व से प्रेरणा प्राप्त करने के बाद वे सतत गति करते हैं। गति के बिना कोई वस्तु नहीं है। यह सह-अस्तित्व ही सृष्टि का प्रारंभिक कारण है। सह-अस्तित्व शाश्वत और सदैव वर्तमान है, जिसके कारण वस्तुएं प्रगट हो रही हैं और अपने विकास-क्रम में पूर्ण विकसित होने तक लगातार

आशा पारस बहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित(PEER REVIEWED) शोध-पत्रिका
खंड -1, अंक-1, अप्रैल-सितंबर 2025 (प्रवेशांक), apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

विकास कर रही हैं। मध्यस्थ दर्शन सह- अस्तित्व को ही अस्तित्व का मूल कारण प्रस्तावित करता है। ब्रह्माण्ड की सबसे सूक्ष्म इकाई परमाणु है। बाकी सारी इकाइयाँ परमाणुओं से मिलकर बनी हैं। भौतिक परमाणुओं को उनकी अवस्था, घटकों की संख्या, द्रव्यमान और रूप के आधार पर पहचाना जाता है। सभी भौतिक परमाणुओं को ठोस, तरल और गैसों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। घटकों की संख्या परमाणु की प्रजाति, अवस्था और द्रव्यमान को तय करती है, इसलिये मध्यस्थ दर्शन में पदार्थ अवस्था को 'परिमाणानुषंगी' अवस्था कहा गया है।

क्वांटम मेकैनिक्स के अंतर्गत अतिसूक्ष्म संरचनाओं के अध्ययन से यह बात स्पष्ट है कि आधुनिकतम विज्ञान भी एक अनंत अक्षय उर्जा स्रोत वाले क्वांटम वैक्यूम की अवधारणा से सहमत है. क्वांटम वैक्यूम एक ऐसा अनंत उर्जा श्रोत है जिसमें सभी इकाइयाँ डूबी, भीगी और घिरी हैं, उसी में प्रगट होती हैं और उसीमें लय हो जाती हैं। कैसिमीर प्रभाव, लैम्ब शिफ्ट तथा डार्क एनेर्जी इस सिद्धांत को प्रायोगिक रूप से प्रमाणित करते हैं। व्यापक की अक्षय उर्जा और शक्ति में डूबे, भीगे, घिरे होने के कारण सभी इकाइयाँ नियंत्रित होती हैं, प्रकृति के नियमों का पालन करती हैं।

प्रकृति में सभी चार क्रमों का क्रमिक उद्भव

सिद्धांत: क्रम ही नियम है

विकास का सह-अस्तित्ववादी सिद्धांत प्रस्तावित करता है कि विकास की शुरुआत पदार्थावस्था से हुई। पदार्थावस्था ने परमाणुओं और अणुओं के बीच भौतिक और रासायनिक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से प्राणावस्था के विकास के लिए कार्य किया, जिससे पानी, एसिड, बेस, डीएनए, प्रोटीन, अमीनो एसिड आदि का निर्माण हुआ, जो अमीबा, पैरामीशियम आदि जैसी सरल प्रजातियों में पादप-कोशिकाओं के निर्माण के लिए आवश्यक थे। मॉस/लाइकेन पादप कोशिकाओं से बनी पहली संरचना थी, जो श्वसन क्रिया कर सकती थी। फिर इन कोशिकाओं ने श्रम किया जिससे जटिल संरचनाओं, विभिन्न प्रकार के पौधों, झाड़ियों और सभी प्रकार के विशाल पेड़ों का विकास किया।

कई ब्रह्मांडीय युगों की अवधि में इन सभी प्रयासों के बाद; पादप क्रम संतृप्त हो गया, इस बीच पादप कोशिकाएँ जीव अवस्था के विकास की दिशा में कार्य कर रही थीं। पादप कोशिकाएँ खुद को जीव-कोशिकाओं में रूपांतरित कर रही थीं। और इन तीनों अवस्थाओं के सन्तृप्त होने के उपरांत जीव कोशिका अतिरिक्त विशेषताओं, रूप, अंतर्निहित गुणों आदि के साथ मानव कोशिकाओं में विकसित हुई।

सृष्टि में प्रगटन का प्रयोजन ज्ञान अवस्था में मानव के रूप में सर्वोच्च चेतना का विकास था, इसके लिये पदार्थ अवस्था ने वो सभी पदार्थ, धातुएँ, तत्त्व उपलब्ध कराये जिनसे मानव का सप्त धातु से सज्जित शरीर बन सके।

परम्परागत विज्ञान में विकास का सिद्धांत:

आशा पारस बहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित(PEER REVIEWED) शोध-पत्रिका
खंड -1, अंक-1, अप्रैल-सितंबर 2025 (प्रवेशांक), apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

1850 के दशक तक, चार्ल्स डार्विन की 'ऑन द ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़' के प्रकाशन ने जैविक उत्पत्ति पर चर्चा को मौलिक रूप से बदल दिया। डार्विन ने पहली बार 'प्राकृतिक चयन' का सिद्धांत दिया और उसके आधार पर विकासवादी परिवर्तन के लिये एक परिष्कृत प्रक्रिया भी प्रस्तुत की।

डार्विन का सिद्धांत ईश्वरीय हस्तक्षेप के बिना विकास के लिए एक क्रियाविधि प्रदान करता है। हालांकि यह सिद्धांत विकासवादी प्रक्रिया के कई महत्वपूर्ण घटकों की व्याख्या नहीं कर सका। विशेष रूप से, डार्विन एक प्रजाति के भीतर लक्षणों में भिन्नता के स्रोत की व्याख्या करने में असमर्थ थे । एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक लक्षणों को सौ प्रतिशत हस्तांतरित करने के मेकेनिज़्म की व्याख्या भी इस सिद्धांत द्वारा नहीं की जा सकी।

20वीं सदी की शुरुआत में जनसंख्या आनुवंशिकी में विकास के बारे में कई प्रमुख विचार एक साथ आए और मॉडर्न सिंथेसिस सिद्धांत का निर्माण हुआ, जिसमें आनुवंशिक भिन्नता, प्राकृतिक चयन और पार्टिकुलेट इन्हेरिटेंस (मेंडेलियन) शामिल है। इसने कई गैर-डार्विनियन सिद्धांतों को प्रतिस्थापित कर दिया (पिग्ल्युची, फिंकल्मैन 2014)। कम्प्यूटेशनल हार्डवेयर और सॉफ़्टवेयर में प्रगति ने तेजी से उन्नत विकासवादी मॉडल के परीक्षण, एक्सट्रापोलेशन और सिस्टम बायोलॉजी के क्षेत्र के विकास को गति दी है। विकासवादी संश्लेषण का विचार 20वीं सदी के आधुनिक संश्लेषण को प्रतिपादित करता है जिसमें बहुस्तरीय चयन सिद्धांत, ट्रांसजेनेरेशनल एपिजेनेटिक इनहेरिटेंस, और विकासशीलता जैसी अवधारणाएँ और कार्यप्रणालियाँ शामिल हैं (ट्रू, कैरोल, 2002; वेरेला, रॉश, 1991) - हालाँकि इस पर कोई सर्वसहमति नहीं है।

सृष्टि के विकास की सह-अस्तित्ववादी अभिधारणा:

सिद्धांत: अस्तित्व में प्रयोजन के साथ प्रगटीकरण होता है

सभी पदार्थ अणुओं से मिलकर बने हैं और अणुओं का धर्म है बने रहना, इसलिये पदार्थ अवस्था रचना होने के बाद से बनी हुई है। पादप अवस्था के विकास के पहले पदार्थ अवस्था में रस – रसायनों का निर्माण हुआ, डीएनए संरचना बनी, इन सबसे पादप कोशिका विकसित हुई, उसमें श्वसन की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ। बीज- वृक्ष न्याय से पादप अवस्था संतृप्त होती है, *बीजानुषंगीयता* के कारण सभी पौधे अपनी प्रजाति को निरंतर बनाये रखते हैं, अत: यह अवस्था भी संतृप्त हुई। जीव अवस्था में अल्प चेतना का विकास हुआ, जीवों के शरीर के अनुरूप पादप कोशिका से ही जीव कोशिका का विकास हुआ, ज्ञानेंद्रियाँ बनी जिनसे जीव जगत आहार, निद्रा, भय और प्रजनन के लिये कार्यरत हुआ। जीव अवस्था में सीमित कर्म स्वतंत्रता और कल्पना शीलता होती है। इसलिए वह चल फिर सकता है, शिकार कर सकता है, भोजन ढूँढ सकता है, अपनी संतति का ध्यान रख सकता है, किंतु सब कुछ एक सीमित चेतना के साथ। जीव जगत *वंशानुषंगी* है, यानि गाय का बच्चा गाय और चिड़िया का बच्चा चिड़िया ही बनता है, इस प्रकार जीव जगत भी संतृप्त हो गया। इन

तीनों अवस्थाओं की निरंतरता को सुनिश्चित करने के बाद पृथ्वी पर मानव का अवतरण हुआ। मानव का शरीर जीव अवस्था की तरह वंशानुषंगी है, किंतु जो 'जीवन- परमाणु' मानव की चेतना का कारण है, वह *संस्कारानुषंगीयता* को प्रदर्शित करता है। यही कारण है कि मानव संतान शरीर से अपने परिजनों के अनुरूप होते हैं किंतु उनकी मूल प्रवृत्तियाँ, स्वभाव बिल्कुल भिन्न हो सकते हैं। संसकारानुषंगी होने के कारण मानव को अपनी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का परिमार्जन करते हुए स्वयं को जीव-अवस्था की मानसिकता से मानव- मानसिकता में परिवर्तित होने के लिये तथा मानवीय व्यवस्था स्थापित करने के लिये शिक्षा संस्कार की आवश्यकता होती है। समग्रता में देखा जाये तो आदर्शवाद हो या भौतिकवाद, मानव व्यवहार को ज्ञान अवस्था की इकाई के रूप में परिभाषित ही नहीं किया गया है। यह मध्यस्थ दर्शन में प्रस्तावित विकास वाद का सर्वथा मौलिक सिद्धांत है (नागराज, समाधानात्मक भौतिकवाद, 2009)।

मध्यस्थ दर्शन द्वारा प्रस्तावित 'विकास की क्रियाविधि'

सिद्धांत: श्रम, गति और परिणाम

मध्यस्थ दर्शन में विकास की प्रक्रिया का सूत्र है 'सारा श्रम; विश्राम के लिये है'। परमाणुओं के घटक निरंतर गति में रहते हैं, वे सतत क्रियाशील हैं। यह क्रियाशीलता प्रकृति की सभी वस्तुओं में निरंतर वृद्धि के लिए उत्तरदायी माना जाता है, चाहे वे सजीव हों या निर्जीव। यह कार्य यादृच्छिक नहीं है, बल्कि इसमें शामिल प्रजातियों में वृद्धि और विकास का पूरक होने लिए डिज़ाइन किया गया है। श्रम हमेशा विकास और उन्नति की दिशा में होता है। विकास की अल्प विकसित अवस्था द्वारा किए गए श्रम के माध्यम से एक उच्च अवस्था विकसित होती है। इसलिए डार्विनियन सिद्धांत को - जो कहता है कि प्रजातियों के विकास का एकमात्र कारण जीवित रहने और योग्यतम के जीवित रहने के लिए संघर्ष था, सह-अस्तित्ववादी विज्ञान द्वारा चुनौती दी जाती है, क्योंकि वास्तविकता में प्रकृति में ऐसा संघर्ष दिखाई नहीं देता है। प्रकृति पूरकता और उपयोगिता के सिद्धांतों पर काम करती है। प्रकृति जिस प्रकार नियम, नियंत्रण और संतुलन के साथ साथ ऊर्जा के संरक्षण के सिद्धांत पर काम करती है, यह इंगित करता है कि प्राकृतिक प्रक्रियाएँ यादृच्छिक नहीं बल्कि सचेत प्रक्रियाएँ हैं। श्रम के माध्यम से सृजन की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि कोई अवस्था संतृप्ति तक नहीं पहुँच जाती और हमेशा के लिए धारणीय (सस्टेनेबल) नहीं हो जाती (नागराज, मानव व्यवहार दर्शन, 2011)।

परमाणु में विकास का यह क्रम पदार्थ अवस्था से पादप अवस्था और फिर जीव अवस्था तक निरंतर चलता रहता है। जड़ परमाणु के जीवन परमाणु में रूपांतरण के फलस्वरूप जीव अवस्था मानव अवस्था में रूपंतरित हो जाता है। यह परमाणु में विकास का अंतिम चरण है। जीवन परमाणु में रूपांतरित होने के बाद का श्रम जीवन की क्रियापूर्णता के लिये होता है। क्रियापूर्णता का सिद्धांत भी मध्यस्थ दर्शन का एक मौलिक सिद्धांत है, जो जीवन परमाणु के चारोँ कोशों में एकसूत्रता का परिचायक है। इसके अनंतर जीवन जागृति की यात्रा आरम्भ होती है जो मानव की आचरण पूर्णता तक पहुंचती है (नागराज, समाधानात्मक भौतिकवाद, 2009)।

डार्विन का विकास वाद मानव को जीव अवस्था से विकसित इकाई मानता है, किंतु मध्यस्थ दर्शन मानव को विकास क्रम की सबसे उन्नत चैतन्य अवस्था की इकाई मानता है, जो जीवन परमाणु के रूप में चेतना के चार स्तरोँ से गठित हुई है, मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और इनके केंद्र में है आत्मा। जिस प्रकार जड़ परमाणु के विभिन्न कोषोँ में इलेक्ट्रॉन चक्कर काटते हैं और केंद्र में तीव्र आकर्षण बल होता है उसी प्रकार मध्यस्थ दर्शन में जीवन – परमाणु के केंद्र में अस्तित्व के एक अंश के रूप में आत्मा की उपस्थिती दर्शायी गयी है जो मध्यस्थ बल का स्रोत है, इसके चारोँ ओर चार कोष मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि के होते हैं। जीवन परमाणु 'अक्षर' होता है, वह अणु- बंधन और भार- बंधन से मुक्त हो जाता है, साथ ही वह किसी भी प्रकार की भौतिक- रासायनिक क्रिया – प्रतिक्रिया नहीं करता, ना ही अपने अंशों का आदान- प्रदान करता है इसलिये उसमें अक्षय बल और अक्षय ऊर्जा होती है। जड़- परमाणु का जीवन- परमाणु मे विकास मध्यस्थ दर्शन की मौलिक अवधारणा है, जबकि चेतना के बारे में आधुनिक विज्ञान आज तक किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा है।

परम्परागत विज्ञान में चेतना का अध्ययन:

परम्परा में सबसे बडा मुद्दा यह है कि चेतना का अध्ययन कैसे किया जाए? दार्शनिक डेविड चाल्मर्स, पॉल चर्चलैंड, सेरेल जॉन आदि ने चेतना को अलग अलग तरीकों से परिभाषित किया है। जॉर्ज मिलर, यूजीन गैलेंटर और कार्ल प्रीब्रम द्वारा लिखित एक अन्य मौलिक शोध, प्लान्स एंड द स्ट्रक्चर ऑफ बिहेवियर (1960) ने प्रस्तावित किया कि मानव संचेतना एक निश्चित सरल कंप्यूटर प्रोग्राम के समान होती है। जीवविज्ञानी फ्रांसिस्को वरेला, दार्शनिक इवान थॉम्पसन और मनोवैज्ञानिक एलेनोर रोश (सभी बौद्ध) ने द एम्बोडीड माइंड (1991) में अनुभवजन्य साक्ष्य का उपयोग करते हुए तर्क दिया कि ज्ञान अनिवार्य रूप से मूर्त है, न कि कंप्यूटर की तरह असंबद्ध। उन्होंने बौद्ध दर्शन के आधार पर चिन्हांकित किया कि "स्व" के बिना ज्ञान संभव नहीं है।

आर्ट एंड द ब्रेन (2000) में, जोसेफ गोगुएन के अनुसार चेतना द्वारा ही लोगों को कला की क्लिष्ट अभिधारणाओं को समझने में मदद मिल सकती है। विलियम डेम्बस्की के अनुसार ब्रह्मांड की नियमितताओं को ध्यान में रखने के लिए एक बुद्धिमान डिजाइनर की आवश्यकता है। 1943 में मस्तिष्क के न्यूरल नेटवर्क के मॉडल में दर्शाया गया कि न्यूरॉन्स कंप्यूटर के लॉजिक गेट्स के समान हैं, लेकिन असली न्यूरॉन्स की तुलना में कहीं अधिक सरल हैं। मनोवैज्ञानिक डोनाल्ड हेब ने शोध किया कि न्यूरॉन्स के बीच कनेक्शन जितना अधिक उपयोग किए जाते हैं, उतने ही मजबूत होते जाते हैं।

चेतना की प्रासंगिकता के बारे में क्वांटम यांत्रिकी में भी चर्चा में है। कोपेनहेगन व्याख्या कहती है कि, जब कोई प्रयोग किया जाता है, तो एक चैतन्य पर्यवेक्षक ही प्रायिकता वितरण फलन को परिभाषित करता है। भौतिक विज्ञानी रोजर

पेनरोज़, चेतना के साथ क्वांटम यांत्रिकी की व्याख्या करने के बजाय, क्वांटम यांत्रिकी के साथ चेतना की व्याख्या करना चाहते हैं।

चार्ल्स डार्विन को वैज्ञानिक समुदाय में उनके शोध 'वेस्टीज ऑफ द नेचुरल हिस्ट्री ऑफ क्रिएशन' में मनुष्य जानवरों से रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न बताये जाने के सुझाव के विरुद्ध गंभीर प्रतिक्रिया का एहसास था, इसलिए, उन्होंने 'ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़' में मानव विकास के विषय को लगभग पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया।

1871 में, डार्विन ने 'द डिसेंड ऑफ़ मैन, एंड सिलेक्शन इन रिलेशन टू सेक्स' प्रकाशित किया, जिसमें डार्विन ने तर्क दिया कि मानव मस्तिष्क और विकसित जानवरों के मस्तिष्क के बीच अंतर केवल विकास के प्रतिशत का है वरना मानव और पशु में कोई विशेष अंतर नहीं है। उदाहरण के लिए, उन्होंने नैतिकता को सहज प्रवृत्ति के एक प्राकृतिक परिणाम के रूप में देखा जो सामाजिक समूहों में रहने वाले पशुओं के लिए अनुकूल था। उन्होंने तर्क दिया कि मनुष्यों और वानरों के बीच सभी अंतरों को हमारे पूर्वजों द्वारा पेड़ों से मैदानों में जाने और यौन चयन से आने वाले चयनात्मक दबावों के संयोजन द्वारा समझाया जा सकता है। मानव उत्पत्ति और मानव विशिष्टता की डिग्री पर बहस 20वीं सदी में भी जारी रही।

मध्यस्थ दर्शन में पदार्थ अवस्था से चैतन्य अवस्था के विकास का सिद्धांत

सिद्धांत - पंचकोश की अवधारणा

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव चेतना पूरी तरह से विकसित चेतना है जो पूरी तरह से विकसित बुद्धि और सप्तधातु से सज्जित मानव शरीर में स्थित होती है। आयुर्वेद में सात प्रकार की धातुएँ प्लाज्मा, रक्त, मांसपेशी, वसा, हड्डी, अस्थि मज्जा और प्रजनन द्रव हैं। ये सप्त धातु शरीर को पोषण देती है और क्रियाशील रखती है, और शरीर के कार्यों को बनाए रखने में सहायता करती है। भौतिक अवस्था से लेकर चेतन अवस्था तक पंचकोश, यानि पाँच परतें या आवरण परमाणुओं को घेरे रहते हैं। सभी परमाणु चाहे सचेत हों या जड़, इन परतों को धारण करते हैं, लेकिन वे जिस अवस्था का निर्माण कर रहे हैं, उसके प्रयोजन और विकासात्मक स्तर, क्षमता और गुणों के अनुसार विभिन्न आवरण या कोश धीरे-धीरे क्रियाशील होते हैं (नागराज, मानव व्यवहार दर्शन, अध्याय 3, पेज 12-13, 2011)।

पदार्थ अवस्था में अन्नमय और प्राणमय कोष होते हैं। इसका अर्थ है कि वे ऊर्जा और कण दोनों को ग्रहण करने में सक्षम हैं। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक परमाणु सार्वभौमिक ऊर्जा के विशाल भण्डार से अपनी कार्य ऊर्जा प्राप्त करने के बाद निरंतर गति में रहता है। वे सजातीय या विजातीय परमाणुओं के साथ प्रतिक्रिया करके यौगिक बना सकते हैं और पुन: अपने घटकों में विघटित भी हो सकते हैं। ये गतिविधियाँ दर्शाती हैं कि जड़ परमाणुओं में भी अन्नमय कोष सक्रिय है। यह अवधारणा दर्शाती है कि पदार्थ अवस्था में भी बाह्य उत्प्रेरकों से प्रेरणा ग्रहण करने और उनके अनुरूप प्रतिक्रिया

देने की सीमित चेतना होती है। पदार्थावस्था में परमाणु अंशों का निश्चित दूरी बनाकर गति करना, उनके परस्परता की पहचान सीमित संचेतना को प्रकाशित करता है.

प्राण अवस्था में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष और मनोमय कोष के तीन आवरण होते हैं। बाह्य उत्प्रेरकों के प्रति प्रतिक्रिया के अलावा वनस्पति कोशिकाओं को अपने पोषण के लिए अपनी पुष्टि के लिये विभिन्न स्रोतों से आवश्यक रसायन और पानी की मात्रा का चयन कर प्रकाश संशलेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाती हैं। यह एक नियंत्रित सचेत प्रक्रिया हैं। विकास क्रम में वे पुष्ट होती हैं, वृद्धि करती हैं और अंततः फल, फूल और बीज उत्पन्न करती हैं। इसे बीज- वृक्ष न्याय कहा जाता है, जिसके द्वारा प्राणावस्था अपनी बीजानुषंगिकता प्रमाणित करती हैं. जैसा बीज वैसा ही पौधा मिलता है।

जीव अवस्था में जीव सीमित चेतना के साथ जीते हैं। वे आहार, निद्रा, भय, मैथुन और अन्य भावनाओं का अनुभव करते हैं और यौन प्रजनन में भी भाग लेते हैं। पशु और मानव दोनों में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय और आनंदमय कोष के सभी चार आवरण होते हैं। वास्तव में आनंदमय कोष के विकास से चेतना का विकास होता है। पशुओं में भय, खुशी या दुःख का अनुभव आनन्दमय कोष की उपस्थिति के कारण होता है। जीवावस्था में जड़- चैतन्य प्रकृति का प्रथम प्रकाशन होता है। शरीर जड़ प्रकृति से बना है इसलिये वह वंशानुषंगी होता है, अर्थात जैसा डीएनए, वैसा शरीर बनता है। जैसे गाय का बछडा अनुकरण और अध्यास के कारण गाय जैसे क्रियाकलाप ही करता है। लेकिन जीवावस्था में चेतना पूर्णतः प्रकाशित नहीं होती।

मानव शरीर वंशानुषंगी बना रहता है किंतु उसकी संचेतना संस्कारानुषंगी होती है। ज्ञानावस्था में मानव जड़ – चैतन्य का सँयुक्त प्रकाशन होता है। जीव चेतना से मानव संचेतना में जाने का प्रस्ताव मध्यस्थ दर्शन में दिया गया है, जिसे चेतना विकास कहा जाता है। जीव चेतना से मानव चेतना में रूपांतरित होने पर विज्ञानमय कोष प्रकाशित हो जाता है

भारतीय ज्ञान पद्धति में इन सभी तथ्यों का वैज्ञानिक विवरण मिलता है। पातंजली के योगशास्त्र में आत्मा के पंचकोशों का वर्णन है। गीता में आत्मा के सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन मिलता है। निरीश्वरवादी सांख्य दर्शन परमाणु का विश्लेषण करता है, और यह भी कहता है कि परमाणु से ही जड़ – चैतन्य सृष्टि का निर्माण हुआ है । इसमें परमाणु को अक्षय बतलाया गया है। किंतु जड़ परमाणु ही विकास क्रम में परिवर्तित होकर अक्षय बल सम्पन्न चैतन्य परमाणु बन जाता है, यह अवधारणा मध्यस्थ दर्शन की सर्वथा मौलिक अवधारणा है। जीवन परमाणु और जीवन क्रियाओं का अध्ययन परम्परागत विज्ञान में कभी नहीं किया गया। मध्यस्थ दर्शन में जीवन परमाणु के हर कोष में उपस्थित अंशों की संख्या, उनके गुण एवम उनकी क्रियाओं की विस्तृत व्याख्या की गयी है, जो विकास के सह-अस्तित्ववादी सिद्धांत की मौलिक संकल्पना है।

आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित(PEER REVIEWED) शोध-पत्रिका
खंड -1, अंक-1, अप्रैल-सितंबर 2025 (प्रवेशांक), apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

निष्कर्ष :

ए. नागराज द्वारा प्रतिपादित विकास का सह-अस्तित्ववादी सिद्धांत डार्विन के विकास वाद से भिन्न विभिन्न प्रजातियोंके संघर्ष से विकास के सिद्धांत के विपरीत परस्पर पूरकता और परमाणु के क्रमिक विकास से चैतन्य परमाणु की उत्पत्ति के सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। प्रकृति में विकास एक सतत और क्रमिक प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप भौतिक अवस्था, पादप अवस्था और पशु अवस्था की संतृप्ति के बाद मानव के रूप में ज्ञान अवस्था के प्रगटन का सिद्धांत दिया गया है। बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के विकास वाद के सिद्धांत चेतना को मानव मस्तिष्क की क्रिया मानते हैं, लेकिन सह-अस्तित्ववाद चेतना का प्रगटन अलग अलग अवस्थाओं के अनुसार होना दर्शाया है, जिसके अनुसार अस्तित्व रूपी चेतना में डूबे, भीगे, घिरे होने के कारण हर जड़ तथा चैतन्य इकाई चेतना को अपनी अपनी पात्रता के अनुसार व्यक्त करती है। निचले स्तर की संरचनाओं में यह सीमित रूप में व्यक्त होता है और जैसे जैसे संरचनाओं का विकास होता है, चैतन्यशीलता बढती जाती है। मध्यस्थ दर्शन जीवन परमाणु तथा जीवन क्रियाओं के अध्ययन के लिये नयी सम्भावनाओं के द्वार खोलता है और वैज्ञानिक शोध के लिये एक समग्र दृष्टि प्रदान करता है।

संदर्भ सूची:

1. Chalmers, David. The Conscious Mind: In Search of a Fundamental Theory. Oxford: Oxford University Press, 1996.
2. Churchland, Paul. A Neurocomputational Perspective: The Nature of Mind and the Structure of Science. Cambridge, Massachusetts: MIT Press, 1989.
3. Darwin, Charles, (1909) On Origin of species, New York: P.F. Collier
4. Dembski, William. Intelligent Design: The Bridge between Science and Theology. Downers Grove, Illinois: InterVarsity Press, 1999.
5. Goguen, Joseph, ed. 'Art and the Brain' Thorventon, UK: Imprint Academic, 2000.
6. Hebb, Donald. (1949)The Organization of Behavior: A Neuropsychological Theory. New York: Wiley.
7. Kauffman, Stuart A. (1993). The Origins of Order: Self-organization and Selection in Evolution. New York: Oxford University Press. ISBN 978-0-19-507951-7.
8. Laubichler Manfred D., Renn J.(2015). "Extended evolution: A Conceptual Framework for Integrating Regulatory Networks and Niche Construction". Journal of Experimental Zoology Part B: Molecular and Developmental Evolution. 324 (7): 565–577. doi:10.1002/jez.b.22631.
9. Miller J., Gallantar E., Pribram K, (1960), New York: Henry Holt & Co.

10. Miller G., Galanter E., Pribram K. (1960) Schemas and the Structure of Behavior. New York: Holt.
11. नागराज ए., 1998, जीवन विद्या एक परिचय, दिव्य पथ संस्थान, अमरकंटक।
12. नागराज ए., समाधानात्मक भूतिकवाद, 2009, अध्याय 4, 38-61, दिव्य पथ संस्थान, अमरकंटक।
13. नागराज ए., 2011, मानव व्यवहार दर्शन, अध्याय 3, 6-15, दिव्य पथ संस्थान, अमरकंटक।
14. Penrose R. (1990) The Emperor's New Mind. Oxford: Vintage.
15. Pigliucci M., Finkelman L. (2014) "The Extended (Evolutionary) Synthesis Debate: Where Science Meets Philosophy". BioScience, 64 (6): 511–516. doi:10.1093/biosci/biu062.
16. Searle J. (1997) 'The Mystery of Consciousness' New York: Granta.
17. True, John R., Carroll, Sean B. (2002). "Gene co-option in physiological and morphological evolution". 'Annual Review of Cell and Developmental Biology' 18: 53–80. doi:10.1146/annurev.cellbio.18.020402.140619.
18. Varela, F., Thompson E., and Rosch E. (1991) The Embodied Mind: Cognitive Science and Human Experience. Cambridge, Massachusetts: MIT Press